JETIR.ORG ISSN: 2349-5162 | ESTD Year : 2014 | Monthly Issue
JOURNAL OF EMERGING TECHNOLOGIES AND INNOVATIVE RESEARCH (JETIR)
An International Scholarly Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

आधुनिक युग में स्वामी विवेकानन्द के नव्य वेदांत और शैक्षिक चिंतन की समालोचनात्मक विवेचना

प्रीति कुमारी
शोधकर्ती
दर्शनशास्त्र विभाग
बी.आर.ए.बिहार विश्वविद्यालय,
मुजफ्फरपुर

शोध–सार

स्वामी विवेकानंद मनुष्य के भौतिक एवं आध्यात्मिक, दोनों रूपों को वास्तविक मानते थे, सत्य मानते थे, इसलिए ये मनुष्य के दोनों पक्षों के विकास पर बल देते थे। इनकी दृष्टि से शिक्षा के द्वारा मनुष्य का भौतिक एवं आध्यात्मिक, दोनों प्रकार का विकास होना चाहिए।

उद्देश्य :– आधुनिक युग में स्वामी विवेकानंद के नव वेदांत और शैक्षिक चिंतन की समालोचनात्मक विवेचना की गई है, साथ ही उसकी प्रासंगिकता की व्याख्या की गई है।

शब्द–कुंज :– शैक्षिक चिंतन, आध्यात्मिक, नव वेदांत, समालोचना, दर्शन।

प्रस्तावना :–

नरेंद्रनाथ की शिक्षा का आरंभ इनके अपने घर पर ही हुआ। ये बड़े कुशाग्र बुद्धि और चंचल स्वभाव के बालक थे। सात वर्ष की आयु तक इन्होंने पूरा व्याकरण रट डाला था। सात वर्ष की अवस्था में इन्हें मेट्रोपोलिटन कॉलेज में भर्ती किया गया। इस विद्यालय में इन्होंने पढ़ने–लिखने के साथ–साथ खेल–कूद, व्यायाम, संगीत और नाटक में रुचि ली और इन सभी क्षेत्रों में ये आगे रहे। 16 वर्ष की आयु में इन्होंने मैट्रीकुलेशन (हाईस्कूल) की परीक्षा प्रथम श्रेणी में पास की। इसके बाद इन्होंने प्रेसीडेंसी कॉलेज में प्रवेश लिया और उसके बाद जनरल एसेम्बलीज इन्स्टीट्यूशन में पढ़ने लगे। इस समय इन्होंने कॉलेज के पाठ्य विषयों के अध्ययन के साथ–साथ साहित्य, दर्शन और धर्म का भी अध्ययन किया। इस क्षेत्र में इन्हें

अपने माता–पिता और अध्यापकों से बड़ा सहयोग मिला। अध्ययनशील नरेंद्रनाथ दत्त का जीवन बड़ा संयमी था; ये ब्रह्मचर्य का पालन करते थे और प्रार्थना, उपासना और ध्यान में मग्न रहते थे। ज्ञान के प्रकाश और आध्यात्मिक तेज से गौर वर्ण के सुंदर युवक का चेहरा और अधिक प्रदीप्त हो उठा था।

नवम्बर 1881 में इन्हें कलकत्ता में ही स्थित दक्षिणेश्वर के मंदिर में जाने और श्री रामकृष्ण परमहंस के दर्शन करने का सौभाग्य मिला। परमहंस इनकी आभा से प्रभावित हुए, परंतु एफ.ए. (इंटर) की परीक्षा की तैयारी में लग जाने के कारण नरेंद्र नाथ बहुत दिनों तक उनके पास न जा पाए। नरेंद्र नाथ ने एफ.ए. पास कर बी.ए. में प्रवेश लिया। इसी बीच इन्होंने परमहंस का सत्संग किया। इस सत्संग का यह प्रभाव हुआ कि नरेंद्र नाथ गृहस्थ जीवन में नहीं बँधे। 1884 में इन्होंने बी.ए. पास किया। उसी वर्ष इनके पिता का स्वर्गवास हो गया। यूँ तो इनके पिता बहुत पैसा कमाते थे परंतु ये खर्च भी बहुत उदारता से करते थे। परिणामतः उनके पास बचता कुछ नहीं था। जब उनका स्वर्गवास हुआ तो घर में पैसा नहीं था। अब नरेंद्रनाथ को अपनी माँ और बहिनों के भरण–पोषण के लिए आर्थिक क्षेत्र में कार्य करना पड़ा। 1886 में श्री परमहंस का भी महाप्रस्थान हो गया। महाप्रस्थान करने से तीन दिन पूर्व परमहंस ने नरेंद्रनाथ को अपना उत्तराधिकार देते हुए कहा था – 'आज अपना सब कुछ तुम्हें देकर मैं रंक बन गया हूँ। मैंने योग द्वारा जिस शक्ति को तुम्हारे अंदर प्रविष्ट किया है, उससे तुम अपने जीवन में महान कार्य करोगे। अपने इस कार्य को पूर्ण करने के बाद ही तुम वहाँ जाओगे जहाँ से आये हो।'

गुरु के महाप्रस्थान के बाद ये उनकी शिक्षाओं के प्रचार एवं प्रसार कार्य में लग गए। 1988 में ये परिव्राजक के रूप में भारत भ्रमण करने के दौरान भारत की नंगी तस्वीर देखी और उसकी आत्मिक एकता की अनुभूति की। इसी क्रम में वे मद्रास पहुँचे, यहाँ के लोग इनसे बहुत प्रभावित हुए और उन्होंने अमेरिका में होने वाले विश्व धर्म सम्मेलन में भेजने के लिए मार्ग व्यय एकत्रित किया। उनके आग्रह पर इन्होंने अमेरिका जाना स्वीकार किया। अमेरिका जाने से पहले इन्होंने अपना नाम विवेकानंद रखा और सितंबर, 1893 में इन्होंने इस सम्मेलन में भाग लिया। यहाँ इन्होंने संसार को भारतीय धर्म और दर्शन से परिचित कराया। विश्व के विद्वान इनकी विद्वता से प्रभावित हुए। स्वामी विवेकानंद का मत था मनुष्य को सदैव दीनहीनों की सेवा करनी चाहिए।

इंग्लैंड से भारत लौटकर इन्होंने 'रामकृष्ण मिशन' की स्थापना की, जिसका उद्देश्य न केवल वेदांत का प्रचार था, अपितु दीन–हीनों की सेवा के लिए शिक्षा संस्थाएँ और चिकित्सालय खोलना भी था।

स्वामी विवेकानंद के शैक्षिक चिंतन का मूल्यांकन :–

किसी वस्तु, क्रिया अथवा विचार का मूल्यांकन किन्हीं पूर्व निश्चित मानदंडों के आधार पर किया जाता है। शिक्षा मनुष्य के निर्माण की प्रक्रिया है, उसके ज्ञान एवं

कला–कौशल में वृद्धि करने की प्रक्रिया है और उसके आचार, विचार एवं व्यवहार को उचित दिशा प्रदान करने की प्रक्रिया है। तब किसी शैक्षिक चिंतन अथवा व्यवस्था का मूल्यांकन इसी आधार पर किया जाना चाहिए कि वह इस प्रकार की शिक्षा के निर्माण में कितनी सहायक हुई है अथवा हो सकती है।

स्वामी विवेकानंद युगदृष्टा और युगसृष्टा थे। यही कारण है कि शिक्षा जगत में ये शिक्षा शास्त्री के रूप में जाने–पहचाने जाते हैं।

शिक्षा का संप्रत्यय :–

स्वामी जी ने शिक्षा को एक ऐसे ज्ञान एवं कौशल के रूप में स्वीकार किया है जो मनुष्य के भौतिक एवं आध्यात्मिक, दोनों प्रकार के विकास के लिए आवश्यक है। मनुष्य के भौतिक विकास की दृष्टि से इन्होंने उद्घोष किया कि 'हमें ऐसी शिक्षा चाहिए जिसके द्वारा चरित्र का गठन हो, मन का बल बढ़े, बुद्धि का विकास हो और मनुष्य स्वावलंबी बनें और उसके आध्यात्मिक विकास की दृष्टि से उद्घोष किया कि 'शिक्षा मनुष्य की अंतर्निहित पूर्णता की अभिव्यक्ति है।'

यदि स्वामी जी द्वारा शिक्षा की इन दो परिभाषाओं को ध्यानपूर्वक देखा–समझा जाए तो स्पष्ट होता है कि स्वामी जी शिक्षा को मनुष्य के भौतिक एवं आध्यात्मिक, दोनों प्रकार के विकास का साधन मानते थे और ऐसी शिक्षा को पूर्ण शिक्षा मानते थे। परंतु इन परिभाषाओं से शिक्षा प्रक्रिया के स्वरूप का बोध नहीं होता। शिक्षा के सम्प्रत्यय को स्पष्ट करने के लिए यह आवश्यक है कि उसकी परिभाषा में शिक्षा प्रक्रिया के स्वरूप एवं कार्यों दोनों को स्पष्ट किया जाए।

शिक्षा के उद्देश्य :–

स्वामी जी मनुष्य के भौतिक एवं आध्यात्मिक, दोनों प्रकार के विकास पर समान बल देते थे। इनकी दृष्टि से शिक्षा को ये दोनों कार्य करने चाहिए। इस आधार पर इन्होंने शिक्षा के सात उद्देश्य निश्चित किए – शारीरिक विकास, मानसिक एवं बौद्धिक विकास, समाज सेवा की भावना का विकास, नैतिक एवं चारित्रिक विकास, व्यवसायिक विकास, राष्ट्रीय एकता एवं विश्वबंधुत्व का विकास और आध्यात्मिक विकास। यदि ध्यानपूर्वक देखें–समझें तो स्वामी जी द्वारा निश्चित शिक्षा के उद्देश्य अति व्यापक हैं, इनमें आज की भारतीय शिक्षा के लगभग सभी उद्देश्य–शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, नैतिक एवं चारित्रिक, व्यावसायिक और आध्यात्मिक विकास के उद्देश्य सम्मिलित है। परंतु पता नहीं भारतीय संस्कृति के पोषक होते हुए भी इन्होंने सांस्कृतिक विकास पर बल क्यों नहीं दिया। संभवतः ये धर्म और संस्कृति को अभिन्न समझते थे। उस समय अपना देश परतंत्र था इसलिए शासनतंत्र और नागरिकता की शिक्षा का प्रश्न इनके मस्तिष्क में कैसे आता। अंतर्राष्ट्रीयता भी इस युग का नारा है, इनके युग में यह विश्वबंधुत्व के रूप में जाना–समझा जाता था।

शिक्षा की पाठ्यचर्या :–

शिक्षा की पाठ्यचर्या के संदर्भ में स्वामी जी का दृष्टिकोण बहुत व्यापक था। इस संदर्भ में इन्होंने पहली बात यह कही कि शिक्षा की पाठ्यचर्या में वे सब विषय एवं क्रियाएँ सम्मिलित की जाएँ जो मनुष्य के भौतिक एवं आध्यात्मिक विकास के लिए आवश्यक हैं। दूसरी बात यह कही कि देश–विदेश, जहाँ से भी जो अच्छा मिले उसे पाठ्यचर्या में स्थान दिया जाए। और तीसरी बात यह कही कि मनुष्य, समाज अथवा राष्ट्र के भौतिक विकास के लिए पाश्चात्य विज्ञान एवं तकनीकी को मुख्य स्थान दिया जाए और उन्हें समझने के लिए अंग्रेजी भाषा को स्थान दिया जाए और मनुष्य के आध्यात्मिक विकास के लिए भारतीय धर्म–दर्शन को पाठ्यचर्या का अनिवार्य विषय बनाया जाए। इन्होंने मनुष्य के भौतिक विकास की दृष्टि से पाठ्यचर्या में मातृभाषा, प्रादेशिक भाषा, संस्कृत और अंग्रेजी भाषाओं को; कला, संगीत, इतिहास, भूगोल, राजनीतिशास्त्र, अर्थशास्त्र, विज्ञान, गृह विज्ञान, कृषि विज्ञान, गणित, तकनीकी और उद्योग शिक्षा विषयों को और खेल–कूद, व्यायाम, योगासन और समाजसेवा क्रियाओं को स्थान दिया और उसके आध्यात्मिक विकास की दृष्टि से साहित्य, धर्म दर्शन और नीतिशास्त्र विषयों को तथा भजन, कीर्तन, सत्संग एवं ध्यान की क्रियाओं को स्थान देने पर बल दिया। इन्होंने उस समय भारत में उच्च शिक्षा की व्यवस्था पर बल दिया और उसकी पाठ्यचर्या में देश–विदेश के उच्चतम ज्ञान एवं कौशल और विज्ञान एवं तकनीकी को स्थान देने पर बल दिया।

यदि स्वामी जी के शिक्षा की पाठ्यचर्या संबंधी विचारों को ध्यानपूर्वक देखा–समझा जाए तो स्पष्ट होता है कि इन्होंने शिक्षा की पाठ्यचर्या को अति विस्तृत बनाने पर बल दिया है। इसमें तो दो मत नहीं कि समस्त ज्ञान–विज्ञान की जीवन में उपयोगिता है परंतु प्रत्येक आदमी न तो सब कुछ सीख सकता है और न ही उसे सब कुछ सीखने की आवश्यकता है। काश स्वामी जी कुछ दिन और जीते तो ये सामान्य शिक्षा की पाठ्यचर्या की स्परेखा निश्चित करते। स्वामी जी की यह बात आज लोगों के गले भले ही न उतरती हो कि वेदांत की शिक्षा सबको अनिवार्य रूप से दी जाए परन्तु उन्हें यह तो मानना ही होगा कि यदि देश को भ्रष्टाचार, घोटालों, अराजकता और आतंकवाद से मुक्त कराना है तो बच्चों को प्रारंभ से ही धार्मिक एवं नैतिक शिक्षा अनिवार्य रूप से देनी होगी।

शिक्षण विधियाँ :–

शिक्षण विधियों के क्षेत्र में स्वामी जी की अपनी कोई नई देन नहीं है; इन्होंने कुछ परंपरावादी शिक्षण विधियों (अनुकरण, उपदेश, व्याख्यान, स्वाध्यान, तर्क और योग) और कुछ आधुनिक विधियों (निर्देशन, परामर्श और प्रयोग) का समर्थन किया है। इन सबमें भी इन्होंने योग विधि को सर्वोत्तम विधि बताया है।

इसमें कोई संदेह नहीं कि स्वामी जी ने प्राचीन एवं अर्वाचीन शिक्षण विधियों की उपयोगिता स्वीकार कर अपनी दूरदर्शिता का परिचय दिया है। परंतु जिस योग विधि का

स्वामी जी ने समर्थन किया है, उसे उसी रूप में आज की परिस्थितियों में प्रयोग नहीं किया जा सकता। इस क्षेत्र में यदि ये शंकर के मनोविज्ञान की व्याख्या आधुनिक परिप्रेक्ष्य में आधुनिक भाषा में करते तो भारत को कुछ और नया दे सकते थे।

स्वामी जी के अनुसार अनुशासन का अर्थ है आत्मा द्वारा निर्दिष्ट होना। स्वामी जी ने स्पष्ट किया कि मनुष्य जन्म से पशु समान होता है अतः उसके जन्मजात अर्थात् प्राकृतिक व्यवहार को अनुशासन नहीं कह सकते, समाज में रहकर वह सामाजिक आचरण सीखता है और जब यह सामाजिक आचरण आत्मप्रेरित होता है तो उसे हम अनुशासन कहते हैं।

इस संदर्भ में हमारा निवेदन है कि जब तक मनुष्य आत्मतत्व की अनुभूति नहीं करता तब तक उसके द्वारा निर्दिष्ट होने का प्रश्न नहीं उठता और आत्मत्व की अनुभूति करने में उसे पूरा जीवन लग सकता है। स्पष्ट है कि विद्यालय अनुशासन की बात स्वामी जी नहीं कर पाए। विद्यालय अनुशासन का हमारी दृष्टि से यह अर्थ होना चाहिए कि शिक्षक और शिक्षार्थी सभी अपने प्राकृतिक स्व पर नियंत्रण कर सकें और सामाजिक नियम एवं आदर्शों के अनुकूल आचरण करने के लिए अंदर से प्रेरित हों। आज इसे स्वानुशासन कहते हैं।

शिक्षक :–

शिक्षकों के विषय में स्वामी जी के विचार परंपरावादी थे। ये शिक्षकों से यह अपेक्षा करते थे कि वे आत्मज्ञानी हों, सदाचारी हों और शिष्यों के दिव्य स्वरूप को पहचानने वाले हों। ये उनसे यह भी अपेक्षा करते थे कि वे मनोविज्ञान की सहायता से शिक्षार्थियों की कर्मजनित भिन्नता को समझें और उनके लिए तदनुकूल शिक्षा की व्यवस्था करें और सद्ज्ञान की सहायता से उनकी आध्यात्मिक एकता को समझें और उन्हें आत्मत्व का ज्ञान कराएँ।

शिक्षकों से आत्मज्ञानी होने की अपेक्षा तो इस युग में नहीं की जा सकती परंतु वे अपने विषय के पंडित हों यह तो सभी चाहते हैं। उनके सदाचारी होने के संबंध में भी सब एकमत हैं। यदि शिक्षक ईमानदार और कर्तव्यनिष्ठ हो जाएँ तो शिक्षा जगत की सभी समस्याएँ आसानी से हल की जा सकती हैं।

शिक्षार्थी :–

शिक्षार्थियों के संबंध में स्वामी जी के विचार परंपरावादी के साथ–साथ आधुनिक भी थे। ये शिक्षार्थियों से ब्रह्मचर्यव्रत के पालन की अपेक्षा करते थे। इनका स्पष्ट मत था किम जब तक शिक्षार्थी इंद्रियनिग्रह नहीं करते, उनमें सीखने के लिए प्रबल इच्छा नहीं होती और वे गुरू में श्रद्धा नहीं रखते तब तक उन्हें न भौतिक ज्ञान दिया जा सकता है और न आध्यात्मिक।

आज शिक्षाविद् स्वामी जी के ब्रह्मचर्यव्रत शब्द से भले ही सहमत न हों परन्तु यह सभी स्वीकार करते हैं कि शिष्यों को संयमी होना चाहिए, ज्ञान पिपासु होना चाहिए,

अध्ययन में रुचि रखने वाला होना चाहिए और परिश्रमी होना चाहिए। और ये सब ब्रह्मचारी के लक्षण हैं। हमारी दृष्टि से भारतीयों को तो ब्रह्मचर्य शब्द का सम्मान करना ही चाहिए।

विद्यालय :–

स्वामी जी ने एक ओर गुरुकुल प्रणाली का समर्थन किया है और दूसरी ओर जन शिक्षा और विशिष्ट शिक्षा की व्यवस्था के लिए स्थान–स्थान पर क्रमशः सामान्य एवं विशिष्ट शिक्षा संस्थाओं की स्थापना पर बल दिया है। इन्होंने स्वयं जनजातियों की बस्तियों में विद्यालय स्थापित किए थे। परंतु विद्यालय कहीं भी हों और किसी भी प्रकार के हों, इनके अनुसार उनका प्राकृतिक वातावरण शुद्ध होना चाहिए, सामाजिक, पर्यावरण आदर्शोन्मुख होना चाहिए और उनमें आध्यात्मिक विकास के लिए योग साधना होनी चाहिए। आज स्वामी जी की पहली दो बातों से तो सभी सहमत हैं परंतु विद्यालयों में आध्यात्मिक विकास हेतु भजन–कीर्तन एवं योग साधना को स्थान देने में विद्वान एकमत नहीं हैं। उनका तर्क है कि यह कार्य परिवार और धार्मिक संस्थाओं का है।

निष्कर्ष :–

जहाँ तक जन शिक्षा, स्त्री शिक्षा, व्यावसायिक शिक्षा, धार्मिक शिक्षा और राष्ट्रीय शिक्षा की बात है, इन सभी क्षेत्रों में स्वामी जी ने हमारा मार्गदर्शन किया है। जन शिक्षा के संदर्भ में इनका दृष्टिकोण बड़ा व्यापक था; ये देश के सभी बच्चों, युवकों, प्रौढों और वृद्धों को साक्षर देखना चाहते थे, उन्हें सामान्य जीवन जीने योग्य बनाना चाहते थे और उन्हें अपनी रोजी–रोटी कमाने में दक्ष करना चाहते थे। इनके इन विचारों ने हमें सामान्य, अनिवार्य एवं निःशुल्क शिक्षा और प्रौढ़ शिक्षा, दोनों की व्यवस्था करने की प्रेरणा दी।

इसमें दो मत नहीं कि स्वामी जी ने स्त्रियों को मातृशक्ति के रूप में सम्मान देकर भारतीय संस्कृति और उसकी अस्मिता की रक्षा की है और स्त्री शिक्षा की अनिवार्यता पर बल देकर हमारा बड़ा उपकार किया है परंतु स्त्री शिक्षा के संदर्भ में इनके ये विचार कि उन्हें आदर्श गृहणी, आदर्श माताएँ और आदर्श शिक्षिकाएँ ही बनाया जाए, संकीर्ण ही कहे जाएँगे। सह शिक्षा के लिए इनकी अस्वीकृति भी आज आलोचना का विषय है।

देश की दरिद्रता को दूर करने के लिए व्यावसायिक शिक्षा की व्यवस्था करने और उसमें पाश्चात्य विज्ञान एवं तकनीकी की शिक्षा को स्थान देने पर बल देना, इनके खुले मस्तिष्क और व्यापक दृष्टिकोण का परिचायक है। आज इसी शिक्षा के द्वारा हम विकास पथ पर अग्रसर हैं।

स्वामी जी वेदांत को सार्वभौमिक धर्म मानते थे और उसकी शिक्षा अनिवार्य रूप से देने पर बल देते थे। आज के युग में किसी विशेष धर्म–दर्शन की शिक्षा के पक्ष में तो लोग नहीं है परंतु सर्वमान्य धार्मिक नैतिकता की शिक्षा के पक्ष में अवश्य हैं।

जहाँ तक राष्ट्रीय शिक्षा की बात है स्वामी जी ने इसकी कोई रूपरेखा तो तैयार नहीं कर पाई परन्तु इन्होंने इस बात पर बल अवश्य दिया था कि यह ऐसी होनी चाहिए जिससे

राष्ट्र भौतिक और आध्यात्मिक दोनों दृष्टियों से आगे बढ़े, ऊँचा उठे।

संदर्भ ग्रंथ :–

1. भगवानदास गुप्त, झाँसी राज्य का इतिहास और संस्कृति, राजकीय संग्रहालय, झाँसी 2008 पृ. 189
2. राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली, फारेन सीक्रेट कंसल्टेशन, 26 मार्च।
3. बी. के. श्रीवास्तव, भारतीय इतिहास की विषयवस्तु एस.बी.पी.डी. 2018, पृ. 307
4. स्वामी विवेकानंद, व्यवहारिक जीवन में वेदांत, रामकृष्ण मठ, नागपुर, 1997.
5. डा० शिखा अग्रवाल, स्वामी विवेकानंद और सांस्कृति राष्ट्रवाद, आविष्कार पब्लिशर्स, जयपुर, 2003.